Reg No 177/2008-2009 ISSN: 2322–0317

PSSH PERSPECTIVE of SOCIAL SCIENCES and HUMANITIES

An International Multidisciplinary Refereed Research Journal

VOL 2, NO 2

JULY - DECEMBER 201

Biannual

Editor

Dr Hemant Kumar Singh

Assistant Professor

Economics Department

Madan Mohan Malviya PG College

Deoria (UP)

Publisher

Herambh Welfare Society

Varanasi (India)

द्राविड मन्दिर स्थापत्य मे विमान एवं शिखर पंजर

डॉ० अजय कुमार मिश्र[1] - डॉ० राखी रावत[2]

भारतीय कला–'श्री, सौन्दर्य, समृद्धि एवं रस से सम्पूरित' विभिन्न भंगिमाओं को जगत में व्यक्त करती है। जागतिक व्यवस्था में सन्निवेषित प्रत्येक जीव के अपने पृथक–पृथक आवास है, जिसका मूल शब्द 'वास' वास्तु, वास्तव्य आदि है। मानव संस्कृति के विकास क्रम में मनुष्य ने अपने आवास अपने सहयोगी पशुओं के आवास तथा मानव द्वारा स्वीकृत देवी–देवताओं के वास स्थान को वृक्ष, गुफा, कन्दरा, पर्णकुटीर कुटियां, प्रस्तर के भवन तथा अपने रूचियों की भिन्नता के कारण वास्तुकला की दृष्टि से एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया।

दैवी विधान को स्वीकार करते हुये मानव मन ने प्राकृतिक देवों का मानवीयकरण करके उपासना ग्रहों तथा देवायतनों का विकास करते हुये देवों के वास स्थान के लिये जिस वास्तु का विकास किया उसे मन्दिर कहा जाने लगा। देव मन्दिरों के निर्माण की प्रक्रिया क्रमशः विकसित होती गयी और सम्पूर्ण आवासीय व्यवस्था को वास्तुकला की संज्ञा से अभिविहित (सम्बोधित) किया गया। वास्तुकला के विभिन्न स्वरूपों के साक्ष्य पुरातत्वविद्ों ने अपने सर्वेक्षण में प्रस्तुत किया और वास्तुकला के विद्वानों ने कला की दृष्टि से मन्दिर वास्तु कला को विभिन्न भौगोलिक परिक्षेत्रों में विभाजित कर उनकी समान विशिष्टताओं के आधार पर मन्दिर वास्तुकला को विभिन्न स्वरूपों में विभाजित किया। इस स्वरूप विभाजन में तमिल क्षेत्र की विभिन्न शैलियों की शाब्दी तथा पदार्थी विभाजन विद्वानों ने किया है। कामिकागम, ईशानशिवगुरूदेवपद्धति, काश्यपशिल्प एवं शिल्परत्न में इन्हें प्रादेशिक वास्तु शैलियों के रूप में वर्णित किया गया है। इन ग्रन्थों में दो प्रकार के क्रम मिलते है। (1) नागर बेसर एवं द्राविड़ (2) नागर द्राविड़ एवं बेसर।

स्ट्रेला क्रैमरिश ने ठीक कहा है कि इनमें प्रथम वर्गीकरण देश के भौगोलिक क्रम का द्योतक है, तथा कालान्तर में इनके सम्मिश्रण से अद्भुत शैली होने का संकेत करता है।[1] इन ग्रन्थों में दक्षिणात्य शिल्प शास्त्र तथा शिल्परत्न मध्यकालीन तो अवश्य है परन्तु इसके सम्पादक टी0गणपति शास्त्री की उक्ति है कि इसमें पूर्व परम्पराओं का प्रतिबिम्ब मिलता है। गुप्तकाल के बाद हुये वास्तुविकासों को समझने में इस शिल्प शास्त्र की उपयोगिता निर्विवाद है। प्रादेशिक वास्तु–शैलियों के रूप में इन स्थापत्य प्रकारों का

---

[1] एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, बी0आर0डी0बी0डी0 पी0जी0 कालेज, आश्रम–बरहज, देवरिया

[2] प्राध्यापिका, प्राचीन इतिहास, रन्जू सिंह महाविद्यालय, सोनाड़ी, देवरिया

वर्णन इस ग्रन्थ (शिल्परत्न) में यत्र–तत्र लाक्षणिक अथवा प्रतीकात्मक रूप में भी हुआ है।[2] इन ग्रन्थों में कहा गया है कि हिमाद्रि (हिमालय) से लेकर कन्या (कन्याकुमारी) तक का विस्तृत भू–भाग 'भारत' के नाम से विश्रुत है, जैसे मानव विग्रह त्रिगुणात्मक (वात पित एवं कफ से संयुक्त) है, उसी प्रकार यह देश भी त्रिगुणात्मक (सात्विक, राजस् एवं तामस) है। हिमालय से लेकर विन्ध्य पर्वत तक भूतल यदि 'सात्विक' है, तो विन्ध्य से कृष्णा पर्यन्त भू–भाग 'राजस्' है अर्थात यह वास्तु शैली उत्तरी शैली है, जो हिमालय से लेकर विन्ध्य पर्वत तक प्रचलित रही। द्राविड़ 'राजस' है अर्थात क्षत्रिय वर्ण की द्योतक है। इस रूप में इसे विन्ध्य शैल से लेकर कृष्णा के बीच की शैली के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। बेसर 'तामस्' है और 'वैश्य' वर्ण की द्योतक है। यह शैली कृष्णा से कन्याकुमारी तक फैली हुयी है। कुछ इसी तरह का प्रतीकात्मक विवरण काश्यपशिल्प में भी प्राप्त होता है। जहाँ कहा गया है कि हिमालय तथा विन्ध्य के अन्तर्गत वसुन्धरा सत्वा हैं विन्ध्याद्रि से कृष्णावेणी (कृष्णा) पर्यन्त भूतल 'राजसाख्य' (राजस) है तथा कृष्णवेणी (कृष्णा) से कन्यान्त (कन्याकुमारी तक) भूतल 'तामस' है और इस रूप में इसका तादात्म्य कृष्णा से कन्याकुमारी के बीच की वास्तु–शैली से किया जा सकता है। द्राविड़ 'राजस' है और इसका सम्बन्ध विन्ध्य पर्वत से कृष्णा नदी के मध्य की मन्दिर शैलियों से स्थापित किया जाता है।[3] शिल्परत्न के अनुसार जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीन देवता है–

'तयं ब्रह्मादि दैवतम्'

तथा 'त्रियुग' 'त्रिवर्ण' एवं 'त्रिचक्र की मान्यता लोक विश्रुत है।[4] उसी प्रकार वास्तु भी तीन कोटिक है, (त्रिधा) नागर, द्राविड़ एवं बेसर। नागर हिमालय एवं विन्ध्याचल की मध्यवर्ती शैली है।

'नागरस्य स्मृतो देशों हिमबद्विन्ध्यमध्यगः'

द्राविड़ शैली वस्तुतः द्राविड़ क्षेत्र की प्रादेशिक शैली है–

द्राविड़स्योपचितो देशो द्राविड़ः)

तथा बेसर विन्ध्य एवं आगस्त्य (नासिक) के बीच के मन्दिर है।

'आगस्तस्यविन्ध्यमध्यस्थो देशो बेसरसम्मतः'[5]

मन्दिर वास्तुकला के निर्माण की विभिन्न शौलियों के शास्त्रीय निर्माण की पद्धतियाँ परवर्ती काल में विकसित होती रही, परन्तु मन्दिर वास्तु का निर्माण शास्त्रों के निर्माण के पूर्व से ही प्रचलीत रहा है। इसलिये उत्तर और दक्षिण की शैलियों का समिश्रण हमें दक्षिण भारत के तमिल मन्दिरों में बेसर शैली के लक्षण के रूप में दिखायी देते है। आदान–प्रदान की यह प्रक्रिया ही सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया कही जाती है।

विमान शैली – (Tower over shrine)

तमिल प्रदेश में मन्दिर निर्माण के क्षेत्र में एक अभुतपूर्व परिवर्तन विमान रचना–विधान के क्षेत्र में हुआ। तमिल (द्राविड़) मन्दिर वास्तु रचना विधान में गर्भगृह तथा उस पर बने शिखर तक का भाग विमान कहलाता था। यह विमान मन्दिर के गर्भगृह के ठीक ऊपर कई तल्लों वाले विशाल आकार में बने होते थे और सबसे ऊपर का भाग शिखर कहलाता था। तमिल क्षेत्र के मन्दिरों में जो विमान निर्मित किये गये है, वे आकार में बहुत विशाल होते

थे। कहीं–कहीं ये विमान 13–14 तल्लों वाले तथा कहीं 95–100 तल्लों वाले भी मिलते हैं। विमान निर्माण शैली में सबसे पहले चौकोर योजना आरम्भ हुयी थी, जिसकी सिरे पर गोलाकार गुम्बज होता था, लेकिन गोपुरम् की प्रारम्भिक कल्पना आयताकार हैं, तथा शीर्ष आकार भी उसी रूप का है। इसकी तुलना बौद्ध चैत्य कक्ष से कर सकते है। कहीं–कहीं विमान में कई मंजिलों वाला पिरामिडाकार गुम्बज भी विद्यमान है। शीर्ष पर गोलाकार स्तूपिका है, लेकिन मण्डप की छत चिपटी है, जो स्तम्भों पर आधारित हैं। कालान्तर में विमान की ऊँचाई कम होती गयी और उसमें अलंकृत ताखों की संख्या नीचे` बाहरी दीवार की बनावट में नागर तथा द्राविड़ शैली का समिश्रण है। इस प्रकार द्राविड़ कल्पनाही तमिल मन्दिर क्षेत्र का केन्द्र बनी रही और उसी आधार पर भविष्य में मन्दिरों का विकास हुआ। भारतीय वास्तुकला में तमिल प्रदेश के मन्दिर आलंकारिक तथा अत्यन्त शोभनीय उदाहरण उपस्थित करते हैं।[6]

विमान के प्रकार

दक्षिण भारतीय तमिल प्रदेश के मन्दिर वास्तुकला के क्षेत्र में यह विमान कई प्रकार से बनाये जाते थे, जिसका विस्तृत उल्लेख अनुवर्ती पंक्तियों में किया गया हैं–

आख्य विमान

तमिल (द्राविड़) मन्दिर में 12–14 तल वाले विमान को मुख्य विमान का गया है। इस प्रकार के विमान में क्षितिज के सामानान्तर गहराई तथा बाहरी भाग ऊभरे हुये हैं, जो सम्पूर्ण रूप से पिरामिड के रूप में दिखायी देते है। लम्बवत् भाग में भारी कार्निस बने हैं। पूरी मीनार सुदृढ़ तथा स्थायी विचार को ध्यान में रखकर निर्मित किया गया है। इस प्रकार का विमान तंजौर के मन्दिर में दिखायी देता है। ब्राउन का मत हैं, कि तंजौर मन्दिर का विमान भारतीय स्थापत्य शिल्प की कसौटी हैं।[7] गंगैकोण्डचोलपुरम् का मन्दिर भी आख्य विमान शैली में ही निर्मित है। इस मन्दिर का विमान 100 फीट ऊँचा बनाया गया है। पूर्वी भाग में प्रवेशद्वार हैं, जिसके दोनों तरफ दो विशालकाय द्वारपाल विद्मान हैं। दारासुरम् का ऐरावतेश्वर और त्रिभुवनम् का त्रिभुवनेश्वर मन्दिर भी इसी शैली के उदाहरण है। इन मन्दिरों में विमान वृहत् होते गये है। विमान तथा मण्डप के चारों ओर अनेक गौड़ मन्दिर बने हैं, जो सभी चहारदीवारी के भीतर स्थित है।

जाति–विमान

मुख्य विमान की लघु अनुकृति को जाति विमान कहा गया है। तमिल प्रदेश के मन्दिर स्थापत्य के क्षेत्र में जब प्रारम्भ में विमान का निर्माण हुआ तो वह लघु आकृति में ही बनाये गये जिसे द्राविड़ शैली में जाति–विमान के नाम से अभिविहित किया गया। मामल्लपुरम्, तंजौर तथा काँचीपुरम् में जो प्रारम्भिक मन्दिर निर्मित हुये वह जाति विमान शैली के आधार पर ही बने हैं।

एक तल विमान

तमिल मन्दिर वास्तुकला कला के क्षेत्र में मन्दिर निर्माण की विमान शैली के अन्तर्गत एक तल विमान का भी निर्माण किया गया। अभिलेखिय

प्रमाण के आधार पर ज्ञात होता है कि इस शैली के विमान का निर्माण अपराजितवर्मा के राज्यकाल के सोलहवें वर्ष में हुआ था। एकतल विमान का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण विरत्नेश्वर (चिंगलीपुत्त) का मन्दिर है, जिसके शिखर में मात्र एक ही मंजिल दिखायी देता है। इसके स्कन्ध भाग तक का निर्माण 'समचतुरस्त्र' (चौकोर) है परन्तु शिखर (ग्रीवा एवं स्तूपिका) बेसर शैली में आकारित है। प्रभावोत्पादकता से विहीन एवं शिल्प वैभव से पूर्णतया रहित साधारण कोटि का यह विमान पल्लव शैली की सान्ध्य–बेला का द्योतक हैं।

द्वितल विमान

जिस मन्दिर का विमान दो तल्लों में बना होता था उसे द्राविड़ स्थापत्य कला के क्षेत्र में द्वितल विमान के नाम से जाना गया। प्रारम्भ में काँचीपुरम् के कैलाशनाथ मन्दिर का द्वितल विमान का उदाहरण था जो बाद में बढ़ाकर विस्तृत कर दिया गया। अपने मूल रूप में यह मन्दिर एक देवालय है, जिसका विमान पिरामिड़ के आकार का है, और सामने अलग–अलग खम्भों वाला बड़ा कक्ष या मण्डप है।[9]

सम्पूर्ण मन्दिर एक समकोण चतुर्भुजाकार ढालान में एक ऊँची दीवार से घिरा हुआ है। जिसमें छोटी–छोटी कोठरियाँ बनी हैं। देवालय और मण्डप को सदियों बाद एक मध्यवर्ती अर्द्धमण्डप के माध्यम से मिलाया गया है, लेकिन उससे मन्दिर का पूरा प्रभाव ही नष्ट हो गया है। देवालय और विमान धर्मराज 'रथ' की शैली के अनुसार हैं, अन्तर केवल यही है कि इसमें कुछ अन्य देवस्थान भी है। देवालय के हर कोण पर एक–एक और हर मुक्त किनारे के मध्य में एक हैं। इससे पूरे मन्दिर के सौन्दर्यात्मक लक्षणों में वृद्धि हो गयी है। इस मन्दिर में पल्लव शैली के सभी मुख्य स्वरूपों को एक मोहक रूप में जुटा कर रखा गया है। मन्दिर को चारो ओर से घेरने वाली दीवार के भीतर कोठरियों जिनमें चित्रकारी के चित्र मौजूद हैं "अपनी बुर्जियों के मुडेरे के साथ खुदे दीवार का अभिकल्प (डिजाइन)[9]" मण्डप के मजबूत खम्भों और सिंह भित्ति स्तम्भों का बार–बार निर्मित किया जाना मन्दिर की योजना में आश्चर्यजनक रूप से बड़े ही उपयुक्त दिखायी देते हैं। समुद्र तटवर्ती मन्दिर की तुलना में इस मन्दिर में विमान को एक नये विकास के रूप में देखा गया है।

त्रितल विमान

इस विमान की भू–योजना चौकोर (चतुरस्त्र) है। जो तीन मंजिलों में (तलों) में विभक्त है। जिसे बेसर शैली का उदाहरण माना जाता है। इन मंजिलो के निर्माण के लिये ग्रेनाइड प्रस्तर का प्रयोग किया गया है। सुन्दरवरदमेरूमाड़ (चिंगलीपुत्त) का मन्दिर इसी शैली में निर्मित है। इस मन्दिर के वास्तुगत रचना विधान में कोई नवीनता नहीं हैं। जगतीतल (अधिष्ठान) का निर्माण भी ग्रेनाइड पत्थर से ही किया गया है। आदि तल में कर्ण कूद भद्रशाल तथा चैत्य गवाक्षो के प्रतीकांकन मालावद्ध रूप में किया गया हैं, जिसमें विष्णु की अनन्तशायी, समपाद एवं आसीन प्रतिमाएँ निर्मित है। ग्रीवा एवं स्तूपिका अठपहल हैं। गर्भगृह एवं मुखमण्डप में देवी–देवताओं, प्रतीहार एवं वैष्णव प्रतीकों का रूपांकन उपलब्ध होता है।

इस शैली के उदाहरण पल्लव कालीन वास्तुकला में महाबलिपुरम् के

मुख्य पहाड़ी पर निर्मित श्रृंखलाबद्ध पाँच एकाश्मक मन्दिर जो पाण्डवों के नाम पर विश्रुत है, जो दक्षिण की ओर स्थित है, वह हैं, इन मन्दिरों का ऊध्वभाग तीन मंजिलों में विभाजित हैं, और प्रत्येक भाग एक विशेष उद्देश्य के फलस्वरूप निर्मित किये गये हैं। यह प्रासाद मन्दिर तक नागर शैली में चतुरस्त्र (चौकोर) हैं परन्तु ग्रीवा (गलभाग) एवं मस्तक जिस पर स्तूपिका बनी है वह अठपहल (अष्ठाश्र) है, जो द्राविड़ शैली की एक मुख्य विशेषता है। निम्न भाग में चतुरस्त्र नागर एवं ऊर्ध्वभाग में द्राविड़ शैलियों के प्रयोग के कारण शिल्पशास्त्री इसे 'विष्णुच्छन्द मिश्रक विमान' का उदाहरण भी मानते हैं, जो एक ओर विष्णु एवं शिव की प्रतिमाओं के विविध प्रकारों से मण्डित है, तो दूसरी ओर इसमें अंशतः नागर एवं द्राविड़ शैलियों का प्रयोग भी प्राप्त होता है। श्रृंखला क्रम में त्रितल स्थान पर अर्जुन रथ उल्लेखनीय है, जो द्राविड़ प्रासाद का उदाहरण है। इसकी तुलना त्रितल–विमान (तीन मंजिलों से युक्त देवालय) से की जा सकती है। भू–विन्यास में सबसे नीचे क्रमशः सिंह एवं गज आकृतियाँ तराशी गयी हैं। सम्पूर्ण देवालय इनकी पीठ पर आधृत प्रदर्शित है। इसकी तुलना शिल्पशास्त्रों के आधार पर सिंहधर (सिंह–पंक्ति) तथा गजधर (हस्ति–पंक्ति) से की जा सकती है।[11] जिनका चित्रण मन्दिर कला में मांगल्य प्रतीक के रूप में देखा गया है। देव प्रासाद के अधिष्ठान (जगती–तल) का भार–वहन करते हस्ति–समूह या सिंह–समूह कुछ अन्य कला केन्द्रों में भी दृष्टव्य है। पूर्व की दिशा में आदि तल के पूर्वी भाग पर पाँच रथिकाएँ तराशी गयी हैं। केन्द्रीय (भद्ररथिका) रथिका में इन्द्र हस्ति पीठ पर आरूढ़ प्रदर्शित है, जो पूर्वी दिशा के अधीश्वर हैं।

मुक्तेश्वर मन्दिर की भू योजना चौकोर (चतुरस्त्र) है, तथा शिखर बेसर शैली का है, जो कि चार मंजिलो में विभक्त हैं। इसका जगती–तल ग्रेनाइट (कणाश्म) पत्थर से निर्मित है, तथा शेषभाग बलुएदार पत्थरों (सैण्डस्टोन) द्वारा बना है। पश्चिमाभिमुख इस मन्दिर में गर्भगृह एवं मुखमण्डप दोनों भाग जगतीतल के ऊपर एक दूसरे से सम्पृक्त हैं।[11] दोनों भागों के स्तम्भों के आधार पर दहाड़ते सिंहमुख एवं व्यालमुख की आकृतियाँ चित्रित हैं, जो पल्लव शैली में निर्मित भित्तिस्तम्भों की नक्काशी की विशेषता की दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विभिन्न तलों में कणकूट, भद्रशाल एवं चैत्य गवाक्ष की आकृतियाँ बनायी गयी है। बाह्य भित्तियों में रथिकाएँ चित्रित है, जिसमें देव आकृतियाँ तक्षित हैं। मुक्तेश्वर मन्दिर 'धर्मामहादेवी ईश्वरम्' नाम से भी विख्यात है। बैकुण्ठपेरूमाड़ मन्दिर का देवालय तथा विमान नष्ट हो चुका है, केवल उपपीठ एवं अधिष्ठान बचे हुये है, जो ग्रेनाइट से निर्मित हैं। यहा से प्राप्त अवशेषों से ज्ञात होता है कि इसके स्थापत्य में कोई मौलिकता नहीं थी। मन्दिर के विमान में ईंटो का प्रयोग भी किया गया था जो इसके निर्माण का कुछ भाग ईंटो से निर्मित होने का भी प्रमाण है। जहाँ तक शिखर की विशेषताओं का प्रश्न है, इसके विनष्ट होने के कारण इसके वास्तुगत अंगो का ज्ञान नहीं हो पाता है।

इस प्रकार तमिल क्षेत्र के वास्तुकलाकारों ने विमान का निर्माण कई

प्रकार से किया। बहुसंख्यक मन्दिरों के विमान तीन उपविभाग में विभक्त है, किन्तु कार्निस से जुड़े हुये हैं। इन मन्दिरों की पट्टियाँ इस प्रकार खुदी है, कि उनकी रचना एक दूसरे के अनुकरण पर बनी हुयी प्रतीत होती है। इन विमानों की खुदी पट्टियों में सबसे नीचे हाथियों का जुलूस बनाया गया है। उसके ऊपर अश्व की पंक्तियाँ हैं, जो गतिशीलता के द्योतक हैं। सबसे ऊपर की पट्टियों पर लतापुष्प, कीर्तिमुख तथा सूर्य के स्वरूप खुदें है। सबसे ऊपर हंस की पंक्तियाँ विद्यमान है। द्राविड़ वास्तु कलाकारों ने दीवार के भित्ति स्तम्भ पर जो मूर्तियाँ खोदकर बनायी है। वे सभी तक्षण कला के उत्कृष्ट नमूने कहे जा सकते है।

शिखर पंजर (पंजर शैली)

तमिल मन्दिर स्थापत्य के क्षेत्र में मन्दिरों के अलंकरण के लिये जो स्तम्भ बनाये जाते थे, या दो स्तम्भों द्वारा शिखर की आकृति में जो जालियाँ बनायी जाती थी, उन्हें 'शिखर पंजर' कहा जाता था। सर्वप्रथम इस प्रकार की शैली का निर्माण पल्लव युगीन कलाकारों ने किया। तमिल क्षेत्र के प्रायः सभी मन्दिरों में यह शैली पायी गयी है। प्रारम्भ में यह शिखर प्रस्तर या ईट के बनाये जाते थे, और इन पर किसी भी प्रकार का अलंकरण नहीं मिलता, लेकिन बाद में वास्तुकलाकारों ने अपनी हाथों से एक नवीन रचना विधान किया और शिखर में होल कर या आयताकार जगह बनाकर उसमें विभिन्न प्रकार की जाली की तरह डिजाईन बना दी जिससे ये झरोखे की तरह हो गये। ये जालीदार शिखर किन्ही मन्दिरों में छोटे रूप में तो कहीं आकार में बहुत ही विशाल बनाये गये हैं, और उन पर विभिन्न प्रकार की नक्काशी की गयी है। सर्वप्रथम पल्लव शासक महेन्द्रवर्मा के शासन काल में मन्दिरों के निर्माण में इस शैली का प्रयोग हुआ इनके निर्माण में पूर्वकाल की सरल नक्काशी की परम्परा की तुलना में अन्तर देखने को मिलता है। इनका आकार कही गोल या चौकोर तो कही रथिका तुल्य लगता है, जिसमें छोटे रूप में देव प्रतिमाएँ बनायी गयी है। स्तम्भों के शीर्ष भाग में बन्धनी (कार्निस) छत के भार वहन के निर्मित्त टंकित की जाती थी। ये स्तम्भ कहीं–कहीं अठपहल भी देखने को मिलता है; तथा इनके आधार पर सिंह की आकृति शिल्पित की गयी है जो पल्लवों की शक्ति या इस वंश के संस्थापक सिंहवर्मा के प्रतीक हैं। तदुपरान्त पल्लव मन्दिरों के स्तम्भों में पंजर शैली में सिंह प्रतिमा का टंकण एक उल्लेखनीय विशेषता के रूप में विकसित हुआ।[12] इनके वास्तुगत अंगो की बनावट की विशेषताओं को देखते हुये पहले विद्वानों की धारणा थी कि इनके निर्माण की कल्पना बौद्ध वास्तु से ली गयी थी। धर्मराज रथ में भी इस शैली का प्रयोग किया गया है। पंजर शैली के स्तम्भों के चारो कोनों (कर्ण) पर दो मुखी रथिकाएँ बनायी गयी हैं, जिनके बीच में शिव की समपाद प्रतिमाएँ शिल्पित हैं और इस रूप में वह रथिका बिम्ब का स्मरण दिलाते हैं, इन रथिकाओं के पार्श्व स्तम्भों के जालियों के निचले भाग में सिंह आकृतियाँ तराशी गयी हैं। ये पार्श्व स्तम्भ भी सिंहपाद स्तम्भ का उदाहरण है, किन्तु मामल्ल शैली में शिल्पित महेन्द्रकालीन उदाहरणों की तुलना में ये अधिक अलंकृत हैं। इसके शीर्ष भाग पर बन्धनी (कार्निस) के विभिन्न नमूने दृष्टव्य हैं। अन्य शिव मूर्तियों में वीणाधर, नाट्य दक्षिणामूर्ति, कंकाल मूर्ति,

सोमारकन्द मूर्ति प्रमुख है। देव प्रतिमाओं में विष्णु, ब्रह्मा, हरिहर, अर्द्धनारीश्वर एवं सूर्य उल्लेखनीय हैं। विष्णु की मूर्तियों में प्रमुख रूप से द्विभुजी एवं चतुर्भुजी रूप की मूर्तियाँ निर्मित की गयी है।[13] जिसमें वह शंख, चक्र, गदा धारण किये हुये है। मनुष्यों और देवताओं की मूर्तियाँ अत्यधिक लालित्यपूर्ण है।

समुद्रतटवर्ती मन्दिर के थोड़े समय बाद ही काँचीपुरम् का कैलाशनाथ मन्दिर बना जिसमें पंजर शैली का विकसित रूप दिखायी देता है। कैलाशनाथ मन्दिर में पल्लव शैली के सभी मुख्य स्वरूपों को बहुत ही मोहक रूप में जुटा कर रखा गया है। मण्डप के मजबूत खम्भे और सिंह भित्ति स्तम्भों को बार–बार निर्मित किया जाना मन्दिर की निर्माण योजना के महत्वपूर्ण अंग के रूप में दिखायी देते हैं। समुद्रतटवर्ती मन्दिर की तुलना में इस मन्दिर के स्तम्भ की जालियों को एक नये रूप में देखा गया है; जो ऊँचाई में विस्तृत होने के साथ ही भली–भांति सन्तुलित अवस्था में भी है। मन्दिर में पंजर बनाने के लिये ग्रेनाइट पत्थर का प्रयोग किया गया है, तथा कहीं–कहीं बुलआ पत्थर से भी बने हुये दिखायी देते है। मन्दिर में समय के साथ कई जगहों पर इन जालियों में मरम्मत की आवश्यकता हुयी है, लेकिन ऐसा न होने के कारण यह कहीं–कहीं खण्डित भी हो गये है। पल्लव वास्तु शैली के अन्तर्गत यह पंजर शैली परिपक्व अवस्था में दिखायी देती है। पंजर शैली का विस्तृत रूप बैकुण्ठपेरूमाड़ मन्दिर में दिखायी देता है मन्दिर के मुख्य भाग– मठ, द्वारमण्डप और देवालय पृथक रूप में दिखायी देते है। मन्दिर में दो स्तम्भों द्वारा शिखर की आकृतियों में जो जालियाँ बनी है, वह मन्दिर के सौन्दर्यात्मक लक्षणों में वृद्धि करती है। इनका निर्माण पत्थर से किया गया है। उसके सामने का हिस्सा 29 फीट आगे ले जाया गया हैं, जिसके बाहरी भाग को सादे पर प्रभावकारी ढ़ंग से शोभा बढ़ाने वाले मूर्तिगत अभिप्रायों से सजाया गया है। इसके अतिरिक्त इन जालियों में जो मूर्तियाँ निर्मित हैं, उनमें पल्लव इतिहास की मुख्य घटनाओं को चित्रित किया गया है, जिसका प्रत्येक किनारा 21½ फीट का है। इसमें चार मंजिले है; जिसमें प्रत्येक के बाहरी भाग के चारों ओर रास्ता है। जालियों में चित्रित की गयी मूर्तियों में प्रमुख रूप से देवी–देवताओं, मुनष्य, पशु–पक्षी का अंकन है। शिखर के विभिन्न तल्लों के चारों दिशाओं में रथिकाओं के भीतर समपाद विष्णु, गोवर्धनधारी विष्णु, विष्णु वराह, भक्तानुग्रह, मधुकैटभ से युद्ध करते गरूडारूढ विष्णु अष्टभुज त्रिविक्रम विष्णु, कोदण्डपाणि राम, अष्टभुज–नृसिंह वैष्णव प्रतीहार, धेनुकासुर का वध करते हुए कृष्ण की आकृति हैं। इसके अतिरिक्त पक्षीयों में चिड़ियाँ, कबूतर, मोर इत्यादि का भी सुन्दर चित्रण किया गया है। इसके साथ ही कूटशाल, भद्रशाल एवं जालीदार वातायन प्रतीकांकन रूप में अलंकृत हैं। श्रीनिवासन ने इसे सर्वाधिक आकर्षक एवं चुम्बकीय माना है।[14] बैकुण्ठपेरूमाड़ मन्दिर से समग्रता एवं स्थापत्य विषयक एकता का भाव प्रस्फुटित होता है, अपने समग्र रूप में यह मन्दिर पल्लव कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण होने के साथ ही तमिल (द्राविड़) पंजर शैली की लाक्षणिक विशेषताओं से नंख–शिख

तक संयुक्त है।

पल्लवों के बाद इस शैली में निर्मित मन्दिरों का निर्माण चोल शासकों ने भी कराया। प्रस्तर खण्डों को काटकर मन्दिरों का निर्माण का क्रम चोलों के शासन में भी जारी रहा। चोलों के साम्राज्य वृद्धि के साथ ही साथ प्रस्तर स्तम्भों के आकार का निर्माण भी बढ़ता गया। तंजौर का वृहदेश्वर मन्दिर तथा गंगैकोण्डचोलपुरम् के मन्दिर इस शैली के चर्मोत्कर्ष के प्रतीक है। दक्षिण भारतीय वास्तुकला के प्रथम वैज्ञानिक अध्येता जी0जे0 दुब्रील के अनुसार "चोल मुख्यतः वास्तुकार के प्रथम वैज्ञानिक थे, उनकी शैली में सरलता एवं भव्यता है।"[15] चोलों की अनुपम असाधारण अद्भूत कांस्य प्रतिमाओं का सौन्दर्य भी अद्वितीय हैं। चोलों की विशाल मूर्तियों के लिये धातु गलाने की तकनीक भी उच्च कोटि की थी।[16] चोल काल में यह पंजर पत्थरों के स्थान पर ईंटो से भी बनने लगे। यह अभिलेखों से स्पष्ट है।[17] तंजौर के वृहदेश्वर मन्दिर के स्तम्भों के जालियों में प्रमुख रूप से शिव प्रतिमाएँ तराशी गयी है, किन्तु इसके साथ ही अन्य देवी–देवताओं को आकृतियों को भी स्थान दिया गया है। उदाहरणार्थः एक जाली में काली की प्रतिमा निर्मित है जो 'महिषमार्दिनी' वेश में है। विचारणीय है कि उनके हाथों में वैष्णव प्रतीक विद्यमान है, एक हाथ में वह शंख धारण किये प्रदर्शित हैं, तथा एक स्थान पर एक नर्तकी की आकृति उत्कीर्ण है। सम्भवतः यह मन्दिर के देवदासी की प्रतिमा है। वह अपने हाथ में फूल की माला धारण किये हुयी है तथा विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित है। गंगैकोण्डचोलपुरम् के भित्तियों में निर्मित आलों में शिव के जीवन से सम्बन्धित दृश्य शिल्पियों द्वारा भव्यता से साथ टंकित किया गया है। नटराज एवं उनसे सम्बन्धित गणों की आकृतियाँ भी तराशी गयी है। इसके अतिरिक्त गणेश पार्वती यक्षों तथा दानवों की मूर्तियों को भी शिल्पकारी में स्थान दिया गया है। चोल मन्दिरों में कोरंगनाथ मन्दिर भी जालियों के शिल्प निर्माण के लिये प्रसिद्ध है इस मन्दिर की जालियों में प्रतिमाओं के साथ ही शीर्ष भाग पर तोरण का निर्माण भी किया गया है, तथा उस पर मुखर होते सिंहो की चित्र वल्लरी अनुपम है। अगस्तेश्वर मन्दिर के स्तम्भों की जालियों में देव प्रतिभाओं से अलग पत्रवल्ली नाग–नागिन, यक्ष–यक्षिणियाँ, वामन आकृतियाँ, किन्नर, नर्तक–नर्तकिया, संगीतज्ञ (वादन मुद्रा में) श्रृंगारिक मुद्रा में मिथुन आदि का चित्रण किया गया है। पंजर शैली में निर्मित अन्य मन्दिरों में महालिंगस्वामी मन्दिर, अग्नीश्वरम् का मन्दिर, मुचुकुँदेश्वर मन्दिर, चोलेश्वर मन्दिर, अम्मन के मन्दिर प्रमुख है।

पाण्ड्य शासन काल में मदुरै के नायकों द्वारा बनवाया गया मीनाक्षी मन्दिर इस शैली का प्रमुख उदाहरण है। मन्दिर के स्तम्भों की जालियों में अमूर्त रूप को भी वास्तुकार ने मूर्तिमान कर दिया है। नायक शासन में निर्मित श्रीरंगम का रंगनाथ मन्दिर स्तम्भों की जालियों में बारिक नक्काशी के लिये प्रसिद्ध है। मन्दिर की जालियों में महिषासुरमर्दिनी, काली का रौद्र रूप, शिव, विष्णु, कृष्ण आदि के विभिन्न लीलाओं से सम्बन्धित दृष्य शिल्पित किये गये है। लोक जीवन से सम्बन्धित विभिन्न दशाओं को भी दर्शाया गया है। रामेश्वर मन्दिर में ग्रेनाइट प्रस्तर के छप्पन स्तम्भ बनाये गये है, जिनकी ऊँचाई बहुत ही ऊपर तक गयी है। सभी स्तम्भ अतीव सुन्दर ढ़ग से खुदे है,

जिनकी जालियों को अनेक मूर्तियों से सजाया गया हैं। जालियों में नाना मुद्रा में नृत्य करती नर्तकियों की आकृतियाँ भी उकेरी गयी हैं।

इस प्रकार तमिल क्षेत्र के मन्दिर वास्तुकला के अन्तर्गत पंजर शैली का महत्वपूर्ण स्थान था। पंजर शैली मन्दिर अलंकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती थी।

सन्दर्भ

ंण हिन्दू टेम्पूल, जिल्द–1 : पाद टिप्पणी–94

इण डॉ0 उदय नरायण रायः भारतीय कला–1968, इलाहाबाद, पृ0सं0–175

बण डॉ0 आर0के0मुकर्जी : दी कास्मिक आर्ट ऑफ इण्डिया–1965, मुम्बई

कण शिल्परत्न अध्याय–6 :

मण प्रफुल्ल कुमार आचार्य मानसारः आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

िण डा0 कृष्णदत्त बाजपेयी : भारतीय वास्तुकला का इतिहास–1990, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (लखनऊ)

हण पर्सी ब्राउन : इण्डियन आर्किटेक्चर (भाग–1) कोई तिथि नहीं, मुम्बई

ीण डा0 उदय नारायण राय : भारतीय कला शिल्पशास्त्र एवं प्राचीन स्थापत्य–1969 इलाहाबाद

पण आनन्द कुमारस्वामी : । भ्पेजवतल वि प्दकपंद ंदक प्दकवदमेपवद ।तजण

रण शिल्परत्न, 38, 112

ाण के0आर0 श्रीनिवासन : स्टडीज इन इण्डियन टेम्पुल आर्किटेक्चर (लेख)

सण के0आर0श्रीनिवासन : स्टडीज इन इण्डियन टेम्पुल आर्किटेक्चर (लेख) पृ0सं0–200–201

उण भ्ण्पउउमत रू ।तज वि प्दकपंद ेपंण

दण इण्डियन टेम्पुल आर्किटेक्चर साउथ इण्डिया लोवर, द्राविड़ देश, पृ0सं0–200–201

वण नीलकण्ठ शास्त्री : चोलवंश–2006 बिहारी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी (पटना), पृ0सं0–538

चण नीलकण्ठ शास्त्री : चोलवंश–2006 बिहारी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी (पटना), पृ0सं0–538

ुण –वही– पृ0सं0–538